*वित्तीय क्षेत्र विधिक सुधार समिति रिपोर्ट (एफएसएलआरसी) : क्या करें और कब करें?**

रघुराम जी. राजन

वित्तीय क्षेत्र विधिक सुधार समिति रिपोर्ट (एफएसएलआरसी) भारत के वित्तीय इतिहास में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण, भली प्रकार से अनुसंधान की गई तथा अच्छी तरह से सार्वजनिक की गई रिपोर्ट है। इस रिपोर्ट में न केवल वित्तीय क्षेत्र के कार्यों के बारे में बताया गया है बल्कि यह भी बताया गया है कि उनकी संरचना किस प्रकार की होगी, और यह भी कि उन्हें संचालित करने वाले क़ानून एवं विनियम किस प्रकार के होंगे। इस रिपोर्ट के लेखक का राष्ट्रीय सेवा के प्रति यह कार्य वास्तव में सराहनीय है। इस रिपोर्ट का प्रभाव अगले कई वर्षों तक अनुभव किया जाता रहेगा।

इस रिपोर्ट में ऐसा बहुत कुछ है जिसे पसंद किया जा सकता है और जिससे सहमत हुआ जा सकता है। उपभोक्ता संरक्षण की आवश्यकता का उल्लेख करते हुए यह मुद्दा उठाना कि क्या बेचे जाने वाले उत्पाद लक्ष्य-ग्राहकों के लिए उपयुक्त हैं, और इसकी जिम्मेदारी वित्तीय संस्थाओं पर डालते हुए कि वे उत्पाद की उपयुक्तता तय करें, रिपोर्ट ने विनियामकों को इस बात के लिए बाध्य कर दिया है कि वे अपने उपभोक्ता संरक्षण ढांचे की समीक्षा करें। हमने रिज़र्व बैंक में, एफएसएलआरसी रिपोर्ट में दिए गए उपयोगी दिशानिर्देशों के आधार पर यह कार्य प्रारंभ कर दिया है।

इस रिपोर्ट में और भी बहुत कुछ ऐसा है जो बड़े काम का है। एफएसएलआरसी में स्पष्ट मौद्रिक ढांचे पर ज़ोर दिया गया है जो डॉ. ऊर्जित पटेल रिपोर्ट में उभरकर आ गया है, जो आने वाले वर्षों में हमारे चिंतन का मार्गदर्शन करेगा। इसी प्रकार, इस रिपोर्ट में एक नई संस्था जैसे - वित्तीय समाधान प्राधिकरण के सृजन पर फोकस किया गया है, जिसकी अत्यधिक आवश्यकता है, जिससे दबावग्रस्त वित्तीय संस्थाओं की समस्याएं सुलझेंगी और अर्थव्यवस्था पर उसकी न्यूनतम लागत आएगी।

मैं इसी प्रकार की अनेक बातें बता सकता हूँ, लेकिन मैं यहां एफएसएलआरसी रिपोर्ट की प्रशंसा करने नहीं आया हूँ बल्कि उसके बारे में थोड़ी परिचर्चा करना चाहूंगा। मेरा यह तर्क है कि तनाव के दो बुनियादी क्षेत्र हैं। पहला है विनियामकों द्वारा निगरानी। एफएसएलआरसी में जो कानून सुझाए गए हैं उनमें छोटी-मोटी बातों के नियंत्रण की बात नहीं हैं, वे विनियामकों को इस बात की स्वतंत्रता देते हैं कि वे अर्थव्यवस्था की बदलती ज़रूरतों के अनुसार ब्योरे भरें। साथ ही, एफएसएलआरसी की अपेक्षा है कि न्यायिक निगरानी के माध्यम से विनियामकों की गतिविधियां की जांच की जाए और उनमें संतुलन रखा जाए। बहुत अधिक जांच करना और संतुलन रखने से नये सिरे से लिखे गए क़ानून द्वारा प्रदान की गई लोच पूरी तरह समाप्त हो जाती है। हमें उचित संतुलन की ज़रूरत है जो हमारे विकास के विभिन्न स्तर के समरूप हो। मेरी चिंता यह है कि हमने इस प्रकार से पूरी तरह सोचा नहीं है।

तनाव का दूसरा क्षेत्र है विनियामकों का समुचित आकार और उनके कार्य-क्षेत्र। इस संबंध में एफएसएलआर रिपोर्ट में की गई सिफारिशें कुछ हद तक खंडित मानसिकता की हैं। एक ओर तो यह कई विनियामकों को एक संस्था के रूप में रखकर परस्पर सहयोग पर जोर देती है, किंतु वहीं पर यह अन्य विनियामकों को तोड़ने का सुझाव देती है जिससे मौजूद सहयोग समाप्त हो सकता है। इसमें इस बात पर अनुभवजन्य तरीके से सहयोग प्राप्त किए जाने या सहयोग समाप्त होने की कोई चर्चा नहीं है, जिससे इस प्रकार की सिफारिश मात्र सनक सी और प्रभाव जमाने जैसी लग रही है, न कि एक गहन विश्लेषण किए जाने जैसी। सच तो यह है कि पूरे विश्व में विभिन्न प्रकार के संगठनात्मक ढांचे मौजूद हैं, जिसका अर्थ यह है कि कोई मात्र एक ढांचा ही सही नहीं है। यदि ऐसा है, तो यथास्थिति से हटने की सख्त वकालत होनी चाहिए थी, जो एफएसएलआरसी में नहीं है।

मैं इन दोनों मुद्दों पर विस्तार से बात करूंगा।

विनियमन के प्रति तर्क

एफएसएलआरसी के अनुसार विनियमन, बाजार की असफलता को रोकने के लिए होना चाहिए या, बोलचाल की भाषा में कहें तो बाज़ार के खराब आचारण को रोकने हेतु होना चाहीए। आयोग की नज़र में अधूरी जानकारी या अल्प प्रोत्साहन, खराब आचरण का कारण है, किंतु, खराब आचरण का एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण कारण है जिसके लिए विनियमन की ज़रूरत पड़ती है उसे अर्थशास्त्री अधूरी संविदा कहते है; अर्थात् विनियमित संस्था (बनाम ग्राहक, जन सामान्य, करदाता अथवा बाजार) के आचरण को संविदा में पूरी तरह निर्दिष्ट नहीं किया जा सकता है क्योंकि उसे वास्तविक समय में देख पाना या जांच कर पाना अत्यंत कठिन है, अथवा इसे कई संविदाओं के माध्यम से मापा जा सकता है।

---

* डॉ. रघुराम राजन, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक, द्वारा मुंबई में 17 जून, 2014 को प्रथम स्टेट बैंक 'बैंकिंग और आर्थिक संगोष्ठी' में दिया गया संभाषण

इसका आशय यह है कि न्यायालय खास प्रकार की संविदाओं का प्रवर्तन कर सकती हैं, जबकि विनियामक कई बार उससे बेहतर प्रवर्तन कर सकते हैं। उदाहरण के लिए, एक बैंक के पास क्रेडिट-कार्ड ग्राहकों से बहुत सी शिकायतें प्राप्त हो सकती हैं। कोई भी ग्राहक इस मामले को अदालत तक नहीं ले जाना चाहेगा, और कोई ग्राहक यह सिद्ध नहीं कर पाएगा कि गलती बैंक की थी। बड़ी संख्या में शिकायतों का प्राप्त होना विनियामक के लिए यह दर्शाता है कि बैंक का आकार दुरुस्त करने की आवश्यकता है। बैंक के ग्राहकों से प्राप्त शिकायतों के स्वरूप तथा अन्य बैंकों से उसे प्राप्त शिकायतों की तुलना करके विनियामक यह माप सकता है कि क्या बैंक में कुछ गलत घट रहा है और वह तद्नुसार कार्रवाई करेगा। इसी प्रकार से, यदि अन्य उत्पादों की तुलना में किसी खास उत्पाद के संबंध में बहुत सी शिकायतें प्राप्त हो रही हैं तो विनियामक उद्योग से उस उत्पाद को यथोचित रूप से बदलने के लिए कह सकता है अथवा यहां तक कि उसपर प्रतिबंध लगा सकता है।

विनियामक को कतिपय प्रकार की संविदाओं से भी रोकना चाहिए - जैसे संपार्श्विकीकृत ऋण दायित्व (सीडीओ) की क्रम-बद्धता और सीडीओ का घनत्त्व जो वित्तीय संकट से पहले उत्पन्न हुए थे। यदि विनियामक यह समझता है कि खास प्रकार की प्रतिभूति से प्रणाली पर अनावश्यक जोखिम पड़ जाएगा तो वह उस प्रतिभूति पर प्रतिबंध लगा सकता है, यद्यपि इसका व्यापार सहमत वयस्कों के बीच हो सकता है। यद्यपि, विनियामक के पास इस बात के कोई सुबूत नहीं होते हैं कि प्रतिभूति के व्यापार का आचारण वैसा ही होगा जैसाकि वह सोचता है, लेकिन विनियामक जोखिम के घटित हो जाने तक इंतज़ार नहीं कर सकता, क्योंकि तब तक बहुत देर हो जाएगी।

महत्वपूर्ण बात यह है कि वर्षों के अनुभवों के आधार पर विनियामकों ने जो सही निर्णय लिए हैं उससे बहुत सी विनियामकगत कार्रवाइयां उत्पन्न हुई हैं। ऐसा करने से, यह कानून, संविदा और यहां तक कि विनियमन के बीच के अंतराल को भर देता है। हर वह चीज जो विनियामक करता है, को न्यायालय में सिद्ध नहीं किया जा सकता। न्यायालय, कंपनी बोर्ड द्वारा कारोबारी निर्णय नियम का उपयोग करते हुए लिए गए खास निर्णयों में हस्तक्षेप नहीं करता है, वे कारोबारी निर्णय के बारे में दूसरा अनुमान नहीं देते हैं, और केवल बोर्डों को तभी न्यायालय तक खींचते हैं जब लिए गए निर्णयों में किसी क़ानूनी प्रक्रिया का उल्लंघन हुआ हो। इसी प्रकार, ऐसे बहुत से विनियामकगत निर्णय हैं जिनके बारे में दूसरे निर्णय का अनुमान नहीं होना चाहिए।

अत्यधिक क़ानूनी निगरानी का खतरा

एफएसएलआरसी में यह भी लिखा है कि विनियामक जो भी करता है वह सभी, न केवल विनियम या उसकी प्रक्रिया बनाना जिसके माध्यम से निर्णय लिए जाते हैं, बल्कि विनियामकगत निर्णय देना तथा नीतिगत निर्णय लेना, सब कुछ क़ानूनी अपील के अधीन होना चाहिए। और इसके लिए वह एक वित्तीय क्षेत्र अपीलीय न्यायाधिकरण का सृजन करना चाहता है। आशय यह है कि विनियामकीय कार्रवाई की अधिक जांच-पड़ताल की जाए और संतुलन रखा जाए। उल्लेख है कि विनियामक जिस प्रक्रिया के माध्यम से निर्णय लेते हैं, तथा बुनियादी सिद्धांत जैसे नैसर्गिक न्याय के अनुसार निर्णय लेते हैं, को रिट याचिका के माध्यम से उच्च न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है। अभी भी, कुछ विनियामकगत निर्णयों के प्रति केंद्र सरकार को अपील की जा सकती है। किंतु कितनी जांच और कितना संतुलन करना पर्याप्त है? क्या हम चाहते हैं कि नीतिगत निर्णयों के भी अपील के योग्य बनाया जाए? क्या क़ानूनी निगरानी ज़रूरत से ज़्यादा नहीं हो जाएगी?

इसके तीन बड़े खतरे हैं जिससे हमें बचना है। सबसे पहला खतरा यह है कि न्यायाधिकरणों से निर्णय देने के लिए कहना जिनके पास न तो क्षमता है, न ही अनुभव या निर्णय देने के लिए जानकारी और जिनमें स्पष्ट सुबूतों का अभाव रहेगा। यदि हम ऐसा करने का प्रयास करते हैं तो हम विनियामक के प्रयोजनों को कम आंक रहे हैं। नि:संदेह, कोई भी न्यायाधिकरण के सद्विवेक पर भरोसा करेगा कि वह ''विनियामकीय निर्णय'' नियमों का पालन करेगा और मामले के व्यापक विन्यास में हस्तक्षेप नहीं करेगा - लेकिन क्या यह दुहरा मानक अपनाना नहीं होगा- हम न्यायाधिकरण के निर्णय पर भरोसा करें और विनियामक के निर्णय पर नहीं। इस बात की अधिक संभावना है, जैसाकि पिछले अनुभव बताते हैं कि संस्थाएं अपने अस्तित्व को सिद्ध करना चाहेंगी, और इसके बावजूद यदि न्यायाधिकरण की स्थापना की जाती है तो वह आवश्यकता से अधिक हस्तक्षेप होगा।

दूसरा खतरा यह है कि अपील करने की प्रक्रिया को आसान बनाने से अपीलें आनी शुरू हो जाएंगी। एक विकसित राष्ट्र में जहां सुव्यवस्थित विनियम हैं, जहां निर्णयागत मामलों का इतिहास है तथा जहां निर्णय बड़ी तेजी से दिए जाते हैं वहां ऐसा करना समस्या की बात नहीं होगी। भारत में, जहां वित्तीय प्रणाली विकसित हो रही है और बहुत से नए विनियम बनाए जाते हैं (इसलिए भी कि यदि हम कानून के सिद्धांत आधारित दृष्टिकोण को अपनाते हैं), और जहां न्यायाधिकरणों को बहुत कुछ सीखना पड़ेगा, ऐसी स्थिति में अपील को बढ़ावा देने से पूरी व्यवस्था ठप हो जाएगी और विकृति पैदा हो जाएगी, क्योंकि ज़रूरी विनियमों को बाधित करके अपील के सहभागी उसकी कमियों का नाजायज़ फायदा उठाएंगे।

अंतिम बात यह है कि प्रत्येक देश में विनियामक के प्रति समादर की भावना होती है और वह सहभागी को स्पष्ट एवं सीमित दायरे में बनाए रखता है। विकासशील देश में, जहां निजी व्यवहार पर मानदंडों या संस्थाओं की बाध्यता कम होती है, यह खासतौर पर महत्त्वपूर्ण

है। लेकिन निजी पार्टियां ऊंचे दामों पर वकीलों की मदद से जिस सीमा तक विनियामक की जांच-पड़ताल करवा सकते हैं, उससे विनियामक के प्रति समादर की भावना तबाह हो जाएगी। इसलिए, अंतिम खतरा यह है कि विनियामक मात्र कागजी-शेर बनकर रह जाएगा और अच्छे आचरण को बढ़ावा देने की अपनी शक्ति खो देगा, यहां तक कि ऐसे क्षेत्रों में भी जो कानूनी समीक्षा के दायरे में नहीं आते हैं।

क्या मेरे कहने का यह मतलब है कि किसी प्रकार की जांच-पड़ताल और संतुलन ज़रूरी नहीं है? बिलकुल नहीं। किंतु जांच-पड़ताल या संतुलनकारी तरीके पहले से मौजूद हैं, साथ ही रिट याचिका के माध्यम से संवैधानिक न्यायालय जैसे उच्च न्यायालय में समीक्षा की जा सकती है। विनियामक के वरिष्ठतम अधिकारियों को सरकार द्वारा नियुक्त किया जा सकता है और हटाया जा सकता है। एफएसएलआरसी रिपोर्ट में यह सुझाव दिया गया है कि संसद को वार्षिक रूप से रिपोर्ट किया जाए तथा सांसदों से नियमित चर्चाएं की जाएं। ये अच्छे सुझाव हैं जिनसे निगरानी और बढ़ेगी।

कुछ लोग तर्क दे सकते हैं कि सेबी पहले से ही प्रतिभूति अपीलीय न्यायाधिकरण के अधीन है, तो क्यों न अन्य विनियामकों को न्यायाधिकरण के अधीन लाया जाए। यदि न्यायाधिकरण द्वारा केवल प्रशासनिक निर्णयों जैसे दंड का आकार और उनके अनुपात के बारे में सवाल किया जाता है, हमें इसमें कोई समस्या नज़र नहीं आती है। लेकिन, यदि वह इससे आगे नीतिगत मामलों में सवाल करने लगे, रिज़र्व बैंक जैसे विनियामक की कार्यप्रणाली पर प्रश्न करने लगे, जिसे प्रणालीगत जोखिमों को कम करने के लिए लगातार निर्णय लेना पड़ता है, तो वह काफी हद तक विकृत हो जाएगा। वस्तुतः किसी भी नये संगठन की यह प्रवृत्ति होती है कि वह अपने अस्तित्व को साबित करने के लिए बढ़-चढ़कर कोशिश करेगा, ऐसे में वित्तीय विनियामक को और अधिक न्यायिक निगरानी करने के लिए अत्यधिक सावधान रहना होगा। बेहतर यह होगा कि इन मुद्दों पर कुछ वर्षों बाद दुबारा नज़र डाली जाए, तब तक विनियमन और निगरानी प्रणाली दोनों अच्छी तरह विकसित हो जाएंगे।

आखिरी बात यह है कि हम यह बेहतर समझते हैं कि यदि विनियामक यह चाहता है कि उसपर भरोसा बना रहे तो उसे अत्यधिक सक्षमता और निष्ठा का प्रदर्शन करना होगा। जहां सरकारी संस्थाओं की सत्यनिष्ठा में सामान्य रूप से कमी आई है, वहीं भारतीय रिज़र्व बैंक ने अपनी निष्ठा कायम रखी है। हम इसी से आत्मसंतुष्ट नहीं हो सकते और हमें अपनी संस्कृति को तथा सेवा प्रदान करने की स्थिति को बनाए रखना होगा ताकि संस्था के प्रति निष्ठा को बढ़ावा मिले। हमें अपनी क्षमताओं को निरंतर उन्नत करना होगा ताकि हम वित्तीय क्षेत्र में हो रहे तीव्र परिवर्तन के साथ-साथ चल सकें।

विनियामक संरचना

एक अन्य क्षेत्र तनाव का कारण है जो एफएसएलआरसी द्वारा विनियामकीय संरचना के बारे में दिए गए तर्क को लेकर है। मान लीजिए कि व्यापार के सभी विनियम को एक साथ मिलाकर एकीकृत वित्तीय एजेंसी में विलय कर दिया जाए। इससे, वायदा बाजार आयोग तथा भारतीय रिज़र्व बैंक की वर्तमान में की जा रही बाण्ड विनियमन की गतिविधियां, एक नई छत के नीचे आ जाएंगी, जैसाकि सेबी है। किंतु इसमें यह मान्यता है कि सहक्रिया का मुख्य तथ्य यह है कि लिखतों का कारोबार कर लिया गया है। लेकिन क्या अन्य सहक्रियाएं बरकरार रहेंगी? और वे कितनी महत्त्वपूर्ण हैं?

उदाहरण के लिए, वायदा कारोबार में वास्तविक वस्तु की सुपुर्दगी होती है, वास्तविक बाज़ार जहां वस्तु की कीमत तय होती है, पर विनियामक निगरानी रखना तथा भंडारगृह पर निगरानी रखना जहां वस्तु की सुपुर्दगी की जाती है, ये विनियामक सहक्रिया के महत्त्वपूर्ण स्रोत हो सकते हैं। क्या एफएमसी को एकीकृत वित्तीय एजेंसी में शामिल कर लिया जाए या फिर यह बेहतर होगा कि उन मंत्रालयों के साथ सुदृढ़ संपर्क रखा जाए जो वास्तविक वस्तुओं पर, निगरानी रखते हैं? मैं समझता हूँ कि इसके जवाब के लिए और अधिक खोजबीन की जानी चाहिए।

इसी प्रकार से, क्या बाण्ड ट्रेडिंग का विनियमन अन्य ऋण उत्पादों जैसे बैंक ऋण के विनियमन तथा मौद्रिक नीति के संचालन (जिसके लिए बाण्ड ट्रेडिंग की आवश्यकता होगी) को साथ-साथ कर देना अन्य प्रकार की ट्रेडिंग से अधिक सहक्रियाशील है? एक बार पुनः मुझे नहीं मालूम कि एफएसएलआरसी रिपोर्ट में इसका कोई बाध्यकारी उत्तर होगा। मेरा निजी विचार यह है कि इस समय बाण्ड ट्रेडिंग के विनियमन को दूसरी जगह ले जाने से सरकारी बाण्ड बाज़ार का विकास बुरी तरह प्रभावित होगा, साथ ही पूरे स्पेक्ट्रम में बाण्ड को आधिक लिक्विड बनाने की प्रक्रिया भी प्रभावित होगी, ऐसी प्रक्रिया जिसका संचालन भारतीय रिज़र्व बैंक करता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि सहक्रिया और विनियामक समरूपता पर ज़ोर देने के मामले में एफएसएलआरसी स्थिर नहीं है। इसमें प्रस्ताव है कि व्यापार के सभी विनियमन को एक छत के नीचे लाया जाए, उपभोक्ता संरक्षण के सभी विनियमन को अन्य छत के नीचे लाया जाए, किंतु ऋण के विनियमन को बांट दिया जाए - बैंकों का विनियमन भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा किया जाना जारी रखा जाए लेकिन अर्ध-बैंक एनबीएफसी को एकीकृत वित्तीय एजेंसी के हवाले किया जाए, एक विशालकाय विनियामक संस्था जो ट्रेडिंग और क्रेडिट दोनों को जोड़ेगी। इस प्रकार के बंटवारे से विनियामक

एकरूपता, ऋण की वृद्धि का पर्यवेक्षण और मौद्रिक नीति का संचालन प्रभावित होगा।

बृहद् रूप से, ऐसा लगता है कि एफएसएलआरसी में पुनर्गठन के फायदे के प्रति आदर्शवादी दृष्टिकोण रखा गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनका विश्वास है कि एक बार कई गतिविधियों को जोड़कर किसी एक संगठन में कर दिया जाएगा, तो सहक्रिया का पूरी तरह से उपयोग हो सकेगा, और यदि गतिविधियां किसी पृथक संगठन में रहती हैं तो सहक्रिया का फायदा नहीं उठाया जा सकेगा। मेरा भी कुछ ऐसा ही विचार है लेकिन मेरा अब यह मानना है कि ये अति है। जहां बड़े अफसरशाही विनियामक के साइलोज सहक्रिया के फायदे को रोकेंगे, वहीं विनियामकों के बीच निरंतर होनेवाली बैठकों से विनियामक, उनके बीच उपलब्ध बहुत सी सहक्रियाओं को हासिल कर लेंगे। एफएसएलआरसी का एक खास उपयोगी प्रस्ताव वित्तीय क्षेत्र विकास परिषद को और स्थायित्व प्रदान करने का है। यह परस्पर विनियामकीय सहयोग का अच्छा स्थल है और इसके फायदे वैयक्तिक संपर्कों के माध्यम से ओर भी बढ़ाए जा सकते हैं। जैसे - सेबी के अध्यक्ष और मैं, हर महीने कई मुद्दों पर बात करने और उनका समाधान करने के लिए एक साथ बैठने का प्रयास करते हैं।

वहीं पर, विनियामकों के बीच परस्पर बातचीत और सहयोग से संगठनात्मक बाधाओं को दूर किया जा सकता है, यह बुद्धिमानी नहीं है कि विनियामक को एक जिम्मेदारी सौंप दी जाए और उस जिम्मेदारी को पूरा करने का उपकरण किसी अन्य हाथ में दे दिया जाए। भारतीय रिज़र्व बैंक की यह जिम्मेदारी है कि वह रुपये के आंतरिक और बाहरी मूल्य को नियंत्रित करे, और स्पष्ट रूप से कहें तो समष्टि आर्थिक स्थिरता कायम रखने की जिम्मेदारी है। अनेक बहुपक्षीय एजेंसियों और अकादमियों ने यह माना है कि आने वाली पूंजी को आकार देने की योग्यता अब समष्टि-विवेकपूर्ण उपकरण-किट का हिस्सा बन गई है। लेकिन भारतीय रिज़र्व बैंक से आंतरिक पूंजी इनफ्लो के नियंत्रण का कार्य हटा लेने से क्या एफएसएलआरसी रिज़र्व बैंक से एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण उपकरण उसके हाथ से नहीं छीन रही है।

यदि यह नहीं सधता है. . . . . .

ये जो बातें हो रही हैं ये सब विनियामकीय दौड़ के बचाव में बिना सोची -समझी बातें हैं। मैं यह बात जोड़ना चाहता हूँ कि ऐसी जगहें हैं जहां रिज़र्व बैंक अपनी शक्तियां त्याग सकता है। उदाहरण के लिए, यदि सरकार अपने कर्ज के मामले का प्रबंध स्वयं करना चाहती है, तो कोई कारण नहीं है कि रिज़र्व बैंक इस रास्ते में आये। मेरा मानना है कि ऋण - प्रबंधन के मामले में हितों के संघर्ष से सरकार को भी कोई कम नुकसान नहीं होगा (यदि एफएसएलआरसी के विचारों को छोड़ दें), लेकिन रिज़र्व बैंक किसी भी प्रकार के कल्याणकारी अहित के बिना सरकार के अनुदेशों का पालन कर सकती है। फिर भी, मेरा यह मानना है कि अभी भी सरकार परामर्श के लिए रिज़र्व बैंक से प्रतिनियुक्ति का सहारा लेगी।

बावजूद इसके, आप मेरी उन टिप्पणियों पर गौर करें जो मैंने एफएसएलआरसी रिपोर्ट की ऐसी बड़ी-बड़ी योजनाओं जिनकी सफलता की उम्मीद बहुत कम है, को नज़रअंदाज करते हुए उसके महत्त्वपूर्ण एवं असंदिग्ध फायदों को रेखांकित करने का प्रयास किया है। निःसंदेह हमारे कानून में बदलाव की ज़रूरत है, लेकिन कानून के लिए बिलकुल नया दृष्टिकोण आज़माने का, पूरी तरह से नये विनियामकीय ढांचे पर उसका निर्धारण करने, विनियमन पर पूरी तरह से नई निगरानी को पूरक बनाने का कोई कारण नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं कि ऐसा भी समय था और ऐसा भी समय आएगा कि अलग-अलग विनियामक कई बार एक दूसरे के साथ नहीं चले हैं। लेकिन क्या किसी संगठन के विलय करने या अन्य को तोड़ देने का यह कोई कारण बनता है, शायद यह कई अन्य आयामों के साथ-साथ उसकी निष्क्रियता सुनिश्चित करना है? जो भी हो ऐसा कोई भी विनियामक ढांचा नहीं है जो संकट के बाद पूरी मज़बूती से पुनः उठ खड़ा हुआ हो। बल्कि कई विनियामकीय ढांचे अपने देश की परिस्थितियों और विनियामक की क्वालिटी के आधार पर सफल हुई हैं अथवा असफल भी हुई हैं।

बेशक, ऐसे कई मौके आए हैं जब विनियामक अपनी सीमा से अधिक बढ़ गया हो या कुछ मनमाना किया हो। लेकिन क्या यह ऐसा कारण है कि उसके प्रत्येक कार्य को न्यायिक प्रक्रिया में दुबारा अनुमान लगाए जाने के अधीन किया जाए? क्या और अधिक जांच-पड़ताल करने की जरूरत के पीछे कोई कारण है या फिर हम ऐसी समस्या को हल करने की नाकाम कोशिश कर रहे हैं जिसका वजूद ही न हो।

चीनी में कहावत है कि नदी पार करते हुए हरेक पत्थर पर अपना वज़न डालने से पहले नदी पार करने के एहसास की कीमत पहचानें। हमें आंखें बंद करके इस उम्मीद पर उसमें कूदना नहीं चाहिए कि जब हम नदी की सतह पर पहुचेंगे तो हमें बचाने के लिए वहां पत्थर पहले से मौजूद होगा। अथवा अमरीका में कहावत है कि यदि कोई चीज़ नहीं सधती है, तो उसका इस्तेमाल न करो !